International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 1; January 2016; Page No. 53-55

''महर्षि पतंजली अष्टांगयोग''... योग दर्शन की शिक्षा

भावना दहिया
Lecturer, Govt. Senior Secondary School, Rohtak, Haryana, India

प्रस्तावना

सांख्य दर्शन के बाद योग दर्शन का नाम आता है। सभी दर्शनों की तरह इसका भी प्रयोजन मोक्ष प्राप्त करना है। परन्तु यहां मोक्ष की प्राप्ति का अर्थ आत्मा की स्वरूप की प्रतिष्ठा है। योग दर्शन के रचयिता महर्षि पतंजली हैं। योग दर्शन का सबसे प्राचीन ग्रन्थ योग सूत्र का है।

योग दर्शन

सांख्य दर्शन के बाद योग दर्शन का नाम आता है। सभी दर्शनों की तरह इसका भी प्रयोजन मोक्ष प्राप्त करना है। परन्तु यहां मोक्ष की प्राप्ति का अर्थ आत्मा की स्वरूप की प्रतिष्ठा है। योग दर्शन के रचयिता महर्षि पतंजली हैं। योग दर्शन का सबसे प्राचीन ग्रन्थ योग सूत्र का है। योग का प्रचलन प्राचीनकाल से चला आ रहा है। इसके अवशेष मोहनजोदड़ो (सिन्धु घाटी) से प्राप्त योगी की मूर्तियां हैं। योग दर्शन के कुल 26 तत्व हैं और 26वां तत्व ईश्वर है। इसलिए इसे 'सेश्वर सांख्य' दर्शन भी कहा जाता है।

महर्षि पतंजली के विषय में भोज ने कहा है– ''योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।।'' (भोजवृति)

योग शब्द विवाद शून्य है। यह एक ऐसी विधा है जिसे भारतीय परम्परा में सर्वोत्तम मोक्ष उपाय कहा जाता है। भारतीय योग भूमि में अनेक योग हैं–मन्त्रयोग, लभयोग, हठ योग, राज योग आदि।

पतंजली द्वारा रचित योग सूत्र के चार पाद और 195 सूत्र हैं

1. समाधिपाद – 51
2. साधनपाद – 55
3. विभूतिपाद – 55
4. कैवल्यपाद – 34

योग की परिभाषा :–

1. पतंजली के अनुसार :

''योगश्चित वृत्ति निरोधः'' (योग सूत्र–1/2)

2. महर्षि याज्ञवल्य के अनुसार :

''संयोग योग इत्युक्तः जीवात्मनः परमात्सनः''

3. गीता के अनुसार :

''योगः कर्मसु कौशलम्'' (अध्याय 06)

योग के अंग :

महर्षि पतंजली ने योग के आठ अंग बताए हैं– ''यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयो–ऽष्टावंगानि'' (योगसूत्र 2/29)

महर्षि पतंजली योग के अंगों के विषय में कहते हैं कि ''इन योग के अंगों का अनुष्ठान करने से अशुद्धि का नाश होता है, जिससे ज्ञान का प्रकाश चमकता है, जिससे कि विवेक ख्याति की प्राप्ति होती है।''

योग के आठ अंगों का विवरण इस प्रकार हैः–

1. यम (Absention)

'यमयन्ति निवर्तयन्तीति यमाः' अर्थात् जो अवांछनीय कार्यों में निवृत करता है यम कहलाते हैं। यम का मुख्य अर्थ है– नियन्त्रण और संयम।

'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचार्यापरिग्रहायमाः। (2/30 योगसूत्र)

i) अहिंसा : अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः (2/34 योगसूत्र) अहिंसा की दृढ़ स्थिति हो जाने पर उस योगी के निकट सब प्राणी वैर का त्याग कर देते हैं। अहिंसा का अर्थ है– हिंसा से रहित। अर्थात् किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार से दुःख न देना। इस पर व्यासाचार्य जी कहते हैं कि ''तत्राहिंसा सर्वदा सर्वदा सर्वभूताना मनभिद्रोहः'' (योग भाष्य)। अहिंसा तीन प्रकार की होती हैः–

1) बौद्धिक अहिंसा : अहिंसा का मार्ग अपनाने के लिए बुद्धि को क्रियाशील होना अति आवश्यक है। हमारे मन में किसी को भी पीड़ा देने वाले विचार न आना ही बौद्धिक अहिंसा है। इसलिए गीता में कहा गया है, 'अहिंसा परमो धर्मः'।
2) वाचिक अहिंसा : किसी को कटु शब्द बोलना ही वाचक हिंसा है। अर्थात् किसी को भी कटुवाणी और उत्तेजक शब्द नहीं कहने चाहिए। इस विषय में कबीर ने अपने दोहों में कहा है कि–

> ''ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
> औरन को शीतल करै, आपुहि शीतल होय।।
> कागा कासे लेत है, कोयल काको देत।
> केवल मीठे वचन से, जग वश में कर लेत।।''

3) कायिक अहिंसा : किसी भी प्रकार से प्राणी को शारीरिक या आघात न पहुचाना ही कायिक अहिंसा है।

ii) सत्य : 'सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्' (2/36 योगसूत्र) सत्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर योगी में क्रिया फल के आश्रय का भाव आ जाता है। सत्य का अर्थ है कि हम किसी बात को जैसा देखते अर्थात् सुनते हैं उसी को उसी रूप में कहना सत्य है। इसके विषय में कहा गया है कि–

> ''सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
> जाके हिरदय सांच है, ताके हिरदय आप।।''

सत्य भी अहिंसा की तरह ही तीन प्रकार का होता हैः–

1) बौद्धिक सत्य : अपनी बुद्धि के द्वारा किसी बात के यथार्थ स्वरूप का निर्णय लेना ही बौद्धिक सत्य है। इसी के द्वारा मन की पवित्रता होती है।
2) वाचिक सत्य : जो बात जिस रूप में देखी, सुनी या अनुभव की गई है उसका उसी रूप में वर्णन करना वाचिक सत्य है।
3) कायिक सत्य : किसी बात को जिस रूप में देखी या सुनी गई है उसको बिलकुल उसी रूप में अपनाना कायिक सत्य है।

iii) अस्तेयः ''अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्'' (2/37 योगसूत्र)
चोरी के अभाव की दृढ़ स्थिति हो जाने पर उस योगी के सामने सब प्रकार के रत्न प्रकट हो जाते हैं। सामान्य तौर पर अस्तेय का शाब्दिक अर्थ है चोरी न करना। शास्त्रों ने कहा है कि दूसरों से द्रव्य ग्रहण करना ही स्तेय है। इस प्रकार की इच्छा के सभी अभाव रूप का स्तेयाभाव 'अस्तेय' है। अस्तेय तीन प्रकार का होता हैः–

1) बौद्धिक अस्तेय : किसी दूसरे व्यक्ति की वस्तु को प्राप्त करने का विचार भी मन में आना बौद्धिक अस्तेय है।
2) वाचिक अस्तेय : किसी अन्य व्यक्ति की वस्तु प्राप्त करने के लिए, किसी दूसरे व्यक्ति से आग्रह न करना या अपने वचन से दूसरे व्यक्ति को चोरी करने के लिए उकसाना ही वाचिक अस्तेय है।
3) शारीरिक अस्तेय : किसी दूसरे व्यक्ति की वस्तु को प्राप्त करने के लिए अपने शरीर का प्रयोग न करना शारीरिक अस्तेय है।

iv) ब्रह्मचर्य : ''ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः'' (2/38 योगसूत्र)
ब्रह्मचर्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर सामर्थ्य का लाभ होता है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से साधक को आत्मबल भी प्राप्ति होती है। गुप्त इन्द्रियों का संयम ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य भी तीन प्रकार का होता है–

1) बौधिक ब्रह्मचर्य : काम वासना पर नियन्त्रण करने के लिए इन्द्रियों को वश में करना होता है। इसके लिए अच्छे अर्थात् शुद्ध विचारों की आवश्यकता होती है। अतः इन्द्रिय सुख का विचार मन में न आने देना ही बौद्धिक ब्रह्मचर्य है।
2) वाचिक ब्रह्मचर्य : इन्द्रिय सुख विषय में वार्तालाप, अश्लील वार्ता, अशिष्ट उपहास आदि न करना ही वाचिक ब्रह्मचर्य है।
3) शारीरिक (कायिक) ब्रह्मचर्य : गुप्ततेन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण ही शारीरिक ब्रह्मचर्य है।

v) अपरिग्रह : ''अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्त्रासंबोधः।''
अपरिग्रह की स्थिति हो जाने पर पूर्व जन्म कैसे हुए थे। इस बात का ज्ञान भली भांति हो जाता है। दैनिक जीवन को चलाने के लिए अनेक भौतिक पदार्थों की आवश्यकता होती है। इन आवश्यक पदार्थों की अधिक लालसा करना ही अपरिग्रह है। यह अपरिग्रह तीन प्रकार का होता हैः–

1) बौद्धिक अपरिग्रह : मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जितने चाहिए उन से अधिक पदार्थों का विचार बुद्धि में न लाना बौद्धिक अपरिग्रह है।
2) वाचक अपरिग्रह : वाणी का संयम ही वाचक अपरिग्रह है।
3) शारीरिक अपरिग्रह : अपनी आवश्यकताओं से अधिक धन, भूमि, वस्त्र आदि का संग्रह न करना ही शारीरिक अपरिग्रह है।

2. नियम (Observances)

यह योग का दूसरा अंग है। सामान्य रूप से समाज द्वारा स्वीकृत नियमों के अनुसार आचरण करना ही नियम है।
''शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमा।'' (2/32 योगसूत्र)
शौच, संतोश, तप, स्वाध्याय और ईश्वर शरणागति ये पांच नियम हैं।

i) शौच : ''शौचात्स्वांग जुगुप्सा परैरसंसर्गः'' (2/40 योगसूत्र)
शौच के पालन से अपने अंगों में वैराग्य और दूसरों से संसर्ग न करने की इच्छा उत्पन्न होती है। शौच का तात्पर्य मन और शरीर की पवित्रता से है। शौच दो प्रकार का होता है–

1) बह्य शौच : सात्विक भोजन, स्नान, नित्यनैमितिक आदि कर्मों से शरीर को साफ बनाया जाता है। सुन्दर वस्त्र पहनना और खुश रहना ही बाह्य शौच है।
2) आंतरिक शौच : इसका संबंध उभयात्मक मन की पवित्रता से है। इसके लिए हमें बुरे विचारों का त्याग करने के लिए नए विचारों को ग्रहण करने का अभ्यास करना चाहिए। इसमें सात्विक गुण मुख्य होता है।

ii) सन्तोष : ''संतोषादनुत्तम सुखलाभः'' (2/42 योगसूत्र)
संतोष से उत्तम कोई दूसरा सुख नहीं है। इसकी बराबरी कोई सुख नहीं कर सकता। इसलिए ये ही सर्वोत्तम सुख है। इसलिए कहा भी गया है कि 'जब आवे संतोषधन, सब धन धूरि समान'।

iii) तप : ''कायेन्द्रियसिद्धिरषुद्धिश्रयातपसः'' (2/43 योगसूत्र)
तप के प्रभाव से अशुद्धि का नाश हो जाता है, तब शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है। महर्षि पतंजली कहते हैं कि 'तपो द्वंद्व सहनम्'। द्वंद्व ये अभिप्राय भूख–प्यास, सर्दी–गरमी आदि को समान रूप से सहन करना है। तप करने से योगी का अपनी इन्द्रियों और मन पर पूर्ण अधिकार होता है। इससे योगी की बुद्धि तीव्र होती है।

iv) स्वाध्याय : ''स्वाध्यायदिष्ट देवतासम्प्रयोग'' (2/44 योगसूत्र)
स्वाध्याय से इष्ट देवता की प्राप्ति होती है। इसका अर्थ है– स्वयं अध्ययन करना, चिंतन करना एवम् मनन करना। नित्य ओऽम् गायत्री आदि का जप करना। स्वाध्याय से आचरण की पवित्रता और वह पुरूषार्थ की और अग्रसर होता है।

v) ईश्वर प्राणिधानः ''समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्''(2/45 योगसूत्र)
ईश्वर प्राणिधान से समाधि की सिद्धि होती है। परमगुरू ईश्वर के प्रति सभी कर्मों का अर्पण करना 'ईश्वर प्राणिधान' है।

3. आसन (Asanas)

'स्थिरसुखमासनम्'
सुखपूर्वक बैठना ही आसन है। अर्थात् 'आस्यतेऽनेनेति आसनम्' जिस अवस्था में शरीर ठीक से बैठ सके वह आसन है। आसन की सिद्धि से शरीर की नाड़ी की शुद्धि और तन–मन की शुद्धि होती है। आसन करने के लिए भूमि समतल हो, गद्दी, कम्बल (कुशा) का आसन होना चाहिए।
'प्रयत्नशैथिल्यानन्तसभापति भ्याम्' (2/47 योगसूत्र)
शरीर को सीधा और स्थिर करके सुखपूर्वक बैठ जाना ही और उसके बाद शरीर सम्बन्धी सभी चेष्टाओं का त्याग कर देना ही प्रयत्न की स्थिलता है। इससे परमात्मा में मन लगाने से इन दो उपायों से आसन की सिद्धि होती है। हठयोग में अनेक प्रकार के आसन बताए गए हैं– पदमासन, भद्रासन, वीरासन, मयूरासन, सुखासन, शीर्शासन आदि। महर्षि पतंजली कहते हैं कि 'ततो द्वन्द्वानभिघातः' अर्थात् आसन से द्वन्दों को चोट नहीं लगती। इस प्रकार आसन ध्यान में सहायक होते हैं।

4. प्राणायाम (Breath Control)

''श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः'' (2/49 योगसूत्र)
श्वास प्रश्वास की गति का रूक जाना प्राणायाम कहलाता है। श्वास का अर्थ है वायु को नासिका द्वारा अन्दर प्रवेश करना और प्रश्वास का अर्थ है कोष्ठ स्थिर वायु को नासिका द्वारा बाहर निकालना। प्राणायाम का शाब्दिक अर्थ होता है 'प्राण का आयाम यानि विस्तार करना।' आसन की सिद्धि हो जाने पर श्वास प्रश्वास की गति को यथाशक्ति नियन्त्रित करना प्राणायाम कहलाता है। जैसे शरीर की सिद्धि के लिए स्नान की जरूरत होती है वैसे ही मन की सिद्धि के लिए प्राणायाम की आवश्यकता होती है।

5. प्रत्याहार (Sense Control) :

''स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः''(2/44 योगसूत्र)

अपने विषयों के संबंध से रहित होने पर इन्द्रियों का जो चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाना है, वह प्रत्याहार है। प्रत्याहार योग का पांचवां अंग है। प्रत्याहार दो शब्दों से बना है–प्रति+आहार। प्रति का अर्थ विपरीत और आहार का अर्थ भोजन। इस प्रकार प्रत्याहार का अर्थ हुआ इच्छा के विपरीत भोजन। दूसरे अर्थों में पतंजली कहते हैं कि इन्द्रियों को विषय की और अग्रसर होने से रोकना ही प्रत्याहार है। ज्ञानेन्द्रियों का स्वभाव विषय की ओर अग्रसर होना है। हमारे शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं जो क्रमषः अपने–अपने विषयों को ग्रहण करती हैं। कान (श्रोत) शब्द को, चक्षु रूप को, जिह्वा रस को, घ्राण गन्ध को और त्वक स्पर्श को ग्रहण करती है। इन विषयों की आसक्ति को रोकना ही प्रत्याहार है। प्रत्याहार का फल 'ततः परमा वष्यतेन्द्रियाणाम' (2/55 योगसूत्र)

इससे इन्द्रियों पर परम (पूर्ण) नियन्त्रण हो जाता है। प्रत्याहार एक तरह से इन्द्रिय तप है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार करते हुए योगी का ध्यान विषय वासनाओं से हट जाता है। उसे ईश्वर की प्राप्ति और सुख का अनुभव होता है। चित्त का निरोध हो जाने पर चित का आग्रह हो जाता है। प्रत्याहार ही केवल ऐसा प्रबल साधन है जिससे चित वश में किया जा सकता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ये योग के पांच अंग 'बहिरंग' कहे जाते हैं। ये केवल आत्मा की शुद्धि की अवस्था को प्रस्तुत करते हैं।

6. धारणा (Fixing of the mind on a particular subject)

'देशबन्धष्चित्तस्य धारणा' (3/1 योगसूत्र) देश विषेष में चित का बांधना। नाभिचक्र, हृदयकादि के भीतर देश है और आकाश, सूर्यादि कोई भी बाहर के देश हैं। इनमें से किसी एक देश में चित को लगाना ही धारणा है। धारणा का अर्थ है धारण करना। अनेक विषयों से चित को हटाकर एक विषय में चित को लगाना ही धारणा है। धारणा में चित मूढ़, क्षिप्त और विक्षिप्त इन तीन अवस्थाओं में रजोगुण से प्रभावित होता है। इसी कारण चित एक विषय पर एकाग्र नहीं होता। इसमें सत्वगुण सुप्तावस्था में होता है। शांत चित से ही एक योगी अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। धारणा ध्यान की नींव है। जैसे–जैसे धारणा का अभ्यास होगा वैसे–वैसे ध्यान भी स्थिर होने लगेगा।

7. ध्यान (Meditation)

''तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'' (3/2 योगसूत्र)

जहां चित को लगाया जाए उसी में वृति का एकतार चलना ही ध्यान है। ध्यान शब्द की उत्पत्ति ध्यै धातु से –ल्युट्' प्रत्यय करने से हुई है जिसका अर्थ है चिंतन या मनन करना। ध्यान के समय सच्चिदानन्द परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य विषय का स्मरण न करना, वरन् उसी अन्तर्यामी ब्रह्म के आनन्दमय, ज्योतिर्मय व शान्तिमय स्वरूप में मग्न हो जाना ध्यान है। ध्यान चित की स्थिरता का माध्यम है। इसमें रजो और तमो का प्रभाव न होकर सत्व गुण की प्रधानता होती है। ध्यान के बिना आप किसी भी भौतिक व अध्यात्मिक लक्ष्य में सफल नहीं हो सकते। ध्यान अपने आप में एक बहुत बड़ी यौगिक प्रक्रिया है फिर भी ध्यान जन–साधारण के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है। धिरंड ऋषि स्थूल ध्यान, ज्योतिर्मय ध्यान, सूक्ष्म ध्यान में तीन ध्यान माने जाते हैं। भक्तिसागर पढस्थ ध्यान, पिण्डस्थ ध्यान, रूपस्थ ध्यान और स्पाति ध्यान ये चार ध्यान माने जाते हैं।

8. समाधि (Samadhi)

''तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूप शून्यामिव समाधिः'' (3/3 योगसूत्र)

जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र की प्राप्ति होती है और चित का निज स्वरूप शून्य सा हो तब वही ध्यान समाधि हो जाता है। 'समाधि ब्रह्मानि स्थितिः' अर्थात ब्रह्म में चित को स्थिर करने का नाम ही समाधि है। इस स्थिति में मनुस्य समस्त मोह माया से मुक्त होकर परमात्मा में लीन हो जाता है। समाधि शब्द का अर्थ सम + धि। सम का अर्थ समत्व और धि का अर्थ बुद्धि है। इस प्रकार समाधि मनुष्य की उन मानसिक अवस्था को सूचित करती है जो बुद्धि निर्मल, पापरहित होकर समत्व भाव वाली हो जाती है। योग शास्त्र के अनुसार समाधि दो प्रकार की होती हैः–

1. सम्प्रज्ञात समाधि
2. असम्प्रज्ञात समाधि

i) सम्प्रज्ञात समाधि : जिस समाधि में ध्यान केन्द्रित करने के लिए किसी अवलंबन वस्तु विशेष की आवश्यकता होती है उसे सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। वस्तु विशेष पर ध्यान करना और उसी में लीन हो जाता है और वह उसी की इच्छा करता हुआ उसका ध्येय बन जाता है। इसे 'सबीज समाधि कहते हैं।'

'वितर्क विचारानन्दास्मितानुगमात्सम्प्रज्ञातः' (1/17 योगसूत्र)

वितर्क, विचार, आनन्द, अस्मिता इन चारों में युक्त यह सम्प्रज्ञात समाधि होती है।

1) **सवितर्क :**– इसमें ध्यान का आलंबन अर्थात् ध्येय स्थूल पदार्थ होते हैं। जैसे मूर्ति आदि।
2) **सविचार :**– इसमें ध्यान का आवलंबन सूक्ष्म पदार्थ जैसे तन्मात्रा होते हैं।
3) **सानन्द :**– इसमें इन्द्रियों आदि सूक्ष्म पदार्थों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इससे आनन्द मिलता है।
4) **सस्मिता :**– इसमें अहंकार पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

ii) असम्प्रज्ञात समाधि : जिस समाधि में योगी को ध्यान लगाने के लिए किसी अवलंब वस्तु विशेष की आवश्यकता नहीं होती उसी को असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। इस प्रकार कहा भी गया है कि ''विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारषेषोऽन्यः'' (1/18 योगसूत्र)

इसे निर्बीज समाधि भी कहते हैं। अवस्था में योगी का ध्यान लुप्त हो जाता है। इससे अनन्तर ही व्यक्ति की प्रज्ञा पूर्वातः जागृत होती है और वह मोक्ष का अधिकारी हो जाता है।

निष्कर्ष :– उपर्युक्त आठ अंगों के अनुष्ठान से अविद्या आदि चित वृत्तियों का नाश होता है। जैसे–जैसे साधक योगाभ्यास करेगा वैसे–वैसे अविद्या क्षीण होती जायेगी। योग से विवेक ख्याति की प्राप्ति होती है। इनका प्रयोजन भी विवेक ज्ञान की प्राप्ति ही है। योगी को सिद्धि की तरह ध्यान न देकर अपने लक्ष्य 'आत्मदर्शन' पर ध्यान देना चाहिए। यही योग दर्शन की शिक्षा है।

संदर्भ

1. योग दर्शन – पतंजली
2. भोजवृति – भोज
3. योगभाश्य – व्यास
4. श्री मद्भगवत् गीता – अध्याय–6